'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १५० | वाराणसी, मंगलवार, २९ दिसम्बर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

झोस (बड़ोदा) १८-१०-'५८

आदिवासियों को आत्मशक्ति का भान करायें

अपने भारत देश में जहाँ-जहाँ पहाड़ हैं, वहाँ-वहाँ नदी के प्रदेशों में जो लोग रहते है, उन्हें 'आदिवासी' कहा जाता है। एक जमाने में ये सब लोग बहुत अच्छी जमीन भी रखते थे। परन्तु दूसरे लोग आये और इन लोगों को धीरे-धीरे हटाते गये। इसलिए इन लोगों को पहाड़ों का आश्रय लेना पड़ा और आज बिहार, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश, आसाम, सारा सह्याद्री और मलयाद्री, विन्ध्य और सतपुड़ा के क्षेत्र में और हिमालय की दरी में 'आदिवासी' नाम के लोग रहते हैं। ये लोग बहुत पिछड़े हुए हैं, ऐसा कहा जाता है। परन्तु पिछड़े कौन हैं और कौन नहीं हैं, यह कहना बहुत मुश्किल है। जिनका जीवन-मान ऊँचा है, वे आगे बढ़े हुए और जिनका जीवन-मान नीचा है, वे पिछड़े हुए, ऐसी व्याख्या अगर करेंगे तो सारा देश ही पिछड़ा हुआ माना जायगा। अमेरिका, रूस, जर्मनी और इंगलैण्ड और दूसरे देशों की तुलना में अपना देश जीवन-मान की दृष्टि से बहुत नीचा है। अपनी सरकार ने एक कमेटी नियोजित की है, जो पिछड़ी हुई कौमों की उन्नति के लिए कोशिश करे। उन्होंने तीन साल तक मेहनत की और फिर सरकार के सामने रिपोर्ट पेश की। रिपोर्ट में कहा है कि पिछड़ी हुई कौम के नाम में हिन्दुस्तान की लगभग आधी कौमें समाती हैं। सरकारवाले कहने लगे हैं कि इस तरह से प्रश्न का हल नहीं होगा। कुछ दूसरा उपाय करना होगा। यह कहकर उसने दो रिपोर्ट एक बाजू में रख दी और राज्यों को कहा कि आप ही योजना बनाइये और फिर लोगों के लिए क्या करना चाहिए, यह देखिये। केन्द्रीय सरकार की ओर से राज्यों को इस तरह का आदेश मिला है। यह बात तो सच है कि अपने देश में पिछड़ी हुए कौमों की गिनती करने जायँ तो आधी तो हो ही जायगी। परन्तु अपने देश में बहुत ज्यादा कोशिश इसी बात की हो रही है कि देश का जीवनमान ऊँचा हो। परन्तु जमीन तो बढ़ती नहीं है और जनसंख्या बढ़ती जा रही है। यह एक बड़ी समस्या देश के सामने है। इसका इलाज किसीको सूझा है, ऐसा नहीं कह सकते हैं। जीवन-मान कैसे ऊँचा किया जाय। यह एक समस्या है। फिर ग्रामोद्योग से जीवन-मान ऊँचा नहीं हो सकता। इसलिए दूसरे उद्योग लाने चाहिए। राष्ट्र के रक्षण के लिए दूसरे उद्योग चाहिए, यह कहकर ग्रामोद्योग की गति रुक जाती है। यह एक बड़ी समस्या, एक बड़ा प्रश्न देश के सामने है। इसका इलाज किसीको सूझा नहीं है।

आगे बढ़ने का अर्थ क्या ?

अब देश में जो पिछड़ी कौमें हैं, वे आगे आयें। याने क्या ? दूसरों की स्पर्धा में या दूसरों की होड़ में आगे आयें ? इसका अर्थ क्या है ? आज इन पिछड़ी हुई कौमों के उद्धार में जो लगे हैं, उनके लिए यह बहुत कठिन सवाल है। आज हरिजन और आदिवासियों को वजीफा दिया जाता है। जिस शिक्षण से सब लोग बेकार हो जाते हैं, वह शिक्षण इन्होंने भी पाया है। जिससे इन लोगों में से कुछ लोग नौकरी माँगने आते हैं और फिर काम कठिन हो जाता है तो इन पिछड़ी कौमों का जीवनमान ऊँचा होना चाहिए। ऐसा खास प्रयत्न करनेवाले कुछ श्रद्धालु, भावुक और सेवापरायण हैं। ये भूत-दया से प्रेरणा लेकर आते हैं। परन्तु पंचमहाल में शुरुआत में ठक्कर बाप्पा जैसे भूतदयावान और करुणामय मनुष्यों ने काम उठाया। ठक्कर बाप्पा जहाँ-जहाँ आदिवासि थे, वहाँ-वहाँ बहुत दूर-दूर तक घूम आये। जहाँ दूसरा कोई न गया था, वहाँ गये और बहुत बड़ी प्रेरणा उन्होंने भारत को दी। उनके दो गुरु थे, जिनसे उन्हें प्रेरणा मिली। एक तो महात्मा गोखले और दूसरे महात्मा गांधी। दोनों गुरु के ये शिष्य थे और ये दोनों गुरुसेवा-परायण थे। दोनों के जीवन का बड़ा हिस्सा हम जिसे राजद्वारी काम कहते हैं, उसमें गया था, क्योंकि हिन्दुस्तान परतंत्र था। भूतदया से प्रेरित होकर दोनों महात्मा सेवाकार्य में लगे थे। बाकी इनका मानस, जीवन, हृदय तो गरीबों की सेवा क लिए ही था। दोनों की प्रेरणा लेकर ठक्कर बाप्पा ने हिन्दुस्तान में यह काम किया और उनके कारण हिन्दुस्तान में सेवकों की जमात खड़ी हुई है, जो हिन्दुस्तान में जगह-जगह सेवा करती है।

भक्तिमार्ग में ध्यान-परायणता

वैसे तो अपने हिन्दुस्तान में भक्तिमार्ग पुराना ही है। इसमें हमें पश्चिम से बहुत लेना नहीं है। परन्तु अपना भक्तिमार्ग ध्यानपरायण ज्यादा था। इसलिए एक तरह से देखा जाय तो यह काल्पनिक वातावरण में काम करता था। प्रेम, ध्यान, एका

ग्रता, ये सारी वस्तुएँ सेवा के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। ध्यान और एकाग्रता के बिना सेवा कैसे होती है? इसके ये दो गुण अमूल्य थे, इसमें कोई शंका नहीं। परन्तु हम अपने भक्तिमार्ग के इन दो गुणों का ही विकास करते गये और सेवा का ध्यान नहीं किया। क्योंकि हमने चातुर्वर्ण्य की रचना ऐसी की है कि इसमें सेवकों के लिए अवकाश है। हिन्दुस्तान की उस वक्त जो स्थिति थी, उसमें जो मान्यता थी, वह गलत थी। परदेशी लोग आये और गये, परन्तु ये लोग अपना-अपना चिन्तन करते बैठे रहे। इससे कुछ विकास भी हुआ। उसकी जरूरत थी। अगर यह नहीं करते तो अपने पास यह भी कुंजी नहीं रहती। भक्तों के वचनों से आज भी प्रेरणा मिल सकती है। आज ही मैं नरसी मेहता के गीत पढ़ रहा था। उसमें एक गीत ऐसा है कि 'गवाय तो गोविन्द गाये रे। पवाय तो पाईने पीजेरे" अगर आप पिला सकते हैं तो एक-दुसरे को पिलाइये और आप भी पीजिये। 'नित सेवा, नित कीर्तन शिर साटे नटवरने' नित कीर्तन सेवा है। उसके होते हुए भी सारी सेवा मूर्ति के आसपास थी।

सेवावृत्ति की आवश्यकता

मध्य-युग में भी यूरोप और इंगलैण्ड में मध्यवर्ती, मध्य-युगीन सन्तों का विचार भी ध्यान और प्रेम ही था। ये लोग इसमें ही डूबे रहते थे। परन्तु ईसाइयों में एक सेवा का शौक ही था, जो ईसा-मसीह के कारण था, ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए दुनिया में ईसाई लोग जहाँ-जहाँ गये, वहाँ वे लोग या तो तलवार लेकर या तराजू लेकर गये। वे व्यापारी बनकर, सेवा-परायण बनकर लोगों की सेवा करने के लिए और उसके साथ धर्म-परिवर्तन करने के लिए गये। इस तरह सारी दुनिया में वे बसे थे। तलवार-वाली रीति उन लोगों के काम नहीं आयी, क्योंकि इसमें से मत्सर पैदा हुआ। परिणामस्वरूप शस्त्रास्त्र बढ़े। सभी लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। अव्यवस्था फैल गयी। दूसरा जो तराजू का मार्ग था, उसमें भी स्पर्धा बढ़ गयी और वह रास्ता खतरनाक साबित हुआ। सेवामार्ग में धर्म-परिवर्तन की बात बहुत खतर-नाक थी, ऐसा मैं समझता हूँ। परन्तु इन तीनों वृत्तियों में जो सेवा-वृत्ति है, उसमें जो प्रयत्नशीलता है, उसके कारण जहाँ हिन्दुस्तान के लोग नहीं गये, वहाँ ईसाई लोग पहुँच गये। अफ्रीकी महाल में एक ईसाई मिशनरी मुझसे मिले थे, जो चालीस साल पहले से वहाँ पहुँचे हैं, जहाँ अपने सेवक आज तक नहीं पहुँचे हैं। वे मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि आपका व्याख्यान मुझे बहुत अच्छा लगा। हमारे देश में सेवावृत्ति की बहुत ही जरूरत है। गांधीजी ने यह सेवावृत्ति अपने समाज में दाखिल की। इसका आरम्भ रामकृष्ण परमहंस ने और विवेकानन्द ने किया था। उन्होंने अद्वैत के साथ सेवाभक्ति को जोड़ दिया था। रामकृष्ण परमहंस का काम सारे भारत में चलता है। परन्तु उनकी सेवा में उत्पादन बढ़ाकर लोगों का जीवन-मान ऊँचा उठाना और उसके द्वारा सेवा करने का विचार नहीं था। गांधीजी ने उत्पादन बढ़ाने का विचार सेवा के साथ जोड़ दिया। वैसे भी विचार में अद्वैत और प्रेम तो था ही। उसमें सेवा और उत्पादन का विचार दाखिल हुआ। इसलिए हिन्दुस्तान का सेवामार्ग सब दृष्टि से लगभग परिपूर्ण हो गया।

आत्मशक्ति का भान करायें

मेरे मन में आता है कि सेवा तो सुन्दर चलती है, परन्तु हम जिसे पिछड़ी-पिछड़ी जमातें कहते हैं और उसमें भी अगर वे मानें कि हम पिछड़े हैं तो उनकी उन्नति कैसे होगी? इसलिए जैसी सेवावृत्ति आदिवासियों में और हरिजनों में जागी, उसी तरह दूसरे लोगों में भी सेवा-वृत्ति बढ़ने की जरूरत है। आदिवासी और हरिजनों को छोड़कर दूसरे लोगों में सेवा-वृत्ति उत्पन्न करनी है। आदिवासियों में और हरिजनों में आत्मज्ञान पैदा होना चाहिए। अदिवासियों को सरकार से या और कहींसे मदद पाने की भावना छोड़नी चाहिए। आदिवासियों का तो वैदिक धर्म है। ये लोग प्रकृति के उपासक हैं और धर्मवान हैं। ऐसा भान उनको होना चाहिए। उन्हें शराब आदि व्यसनों से मुक्ति लेनी चाहिए। उनमें ऐसी निष्ठा जगनी चाहिए कि हम साक्षात् सेवक हैं और हम खेत में काम करते हैं और परसेवा करते हैं। सूर्य के प्रकाश का सीधा आलिंगन लेते हैं। हम बारिश, हवा आदि को जीवन का अंग मानते हैं और सीधे प्रकृति के सम्पर्क में आते हैं। उनमें ऐसी भावना होनी चाहिए। इस तरह आदिवासी जागें तो उद्धार कर सकते हैं और दूसरों पर उपकार कर सकते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय संस्कृति की पाश्चात्य संस्कृति के साथ तुलना करते हुए एक विचित्र दृष्टान्त दिया। उन्होंने यह लिखा कि हिन्दुस्तान में मजदूर सारा दिन काम करते हैं और थककर जब घर आते हैं तो रात में भजन वगैरह गाकर अपनी थकान कम करते हैं। पर पश्चिम के मजदूर काम करते हैं तो शराब पीकर अपनी थकान दूर करते हैं। दोनों संस्कृतियों में यह फर्क है। अपने देश की संस्कृति में शराब बिलकुल ही नहीं है तो भी लोग पीते हैं, क्योंकि उन्हें दूसरा पोषक तत्त्व मिलता नहीं। शराब पीकर वे सारी रात सोते रहते हैं। इस तरह दोनों अपना भार कम हो, ऐसी कल्पना से शराब पीते हैं। आदिवासियों को विश्वास हो जाय कि अपना उद्धार हम स्वयं कर सकते हैं और बाकी उपकार दूसरे लोग कर सकते हैं। उपकार याने अल्प मदद। परन्तु अपना उद्धार तो हमें खुद करना चाहिए। ऐसी जागृति आदिवासियों में होनी चाहिए। इसे मैं आत्मशक्ति का भान कहता हूँ। इसलिए जो लोग उनमें जाकर उनकी सेवा कर रहे हैं, उनमें आत्मशक्ति का भान किस तरह से होगा, इसका विचार करो। इतना ही मेरा सुझाव है। ●●●

प्रार्थना-प्रवचन

तारापुर (खेड़ा) ५-११-'५८

अहिंसा में समझौते की कुछ भी गुंजाइश नहीं

यहाँ दो चित्र रखे हैं। मेरा पूरा व्याख्यान ये दो चित्र ही दे सकते हैं।

आज देश में बुद्धि का करुणावतार

आज भारत में बुद्धावतार चलता है। बुद्ध भगवान का अवतार आखिरी अवतार कहा जाता है, इसीलिए वह सबसे ज्यादा विकसित माना गया। पहला मत्स्यअवतार—एक छोटी-सी मछली का अवतार, दूसरा कूर्म अवतार, इस तरह करते-करते आखिर में छोटे-से वामन का अवतार और फिर परशुराम का

अवतार आया। बाद में सत्यनिष्ठावतार राम का और प्रेमावतार भगवान कृष्ण का हुआ। उसके बाद करुणावतार बुद्ध का हुआ। इस तरह अवतारों का भी एक के बाद एक विकास हुआ है। इन अवतारों में ऊँची-से-ऊँची भूमिका प्रकट हुई है, क्योंकि समाज की भूमिका जितनी ऊँची रहती है, उतनी ही अवतार की भूमिका ऊँची होती है। अब यदि पुनः कोई अवतार होगा तो वह इससे भी ऊंची भूमिका में आयेगा, हम ऐसी कल्पना कर सकते हैं। कुछ भी हो, आज तो बुद्ध का अवतार ही चल रहा है।

समाज में विचार का मूर्तरूप गांधीजी

इसी तरह महात्मा गांधीजी एक सेवक थे और सेवक के नाते ही अपने को मानते थे। उन्होंने कभी ऐसा नहीं कहा कि मैं आपके लिए नया धर्म-विचार लाया हूँ। वह सदा यही कहते कि "मैं पुराने ऋषियों के विचारों पर अमल करने की कोशिश करता हूँ। समाज और व्यक्ति के जीवन में वह किस तरह लाया जाय, दोनों जीवन एकरूप हैं, यह समझकर व्यक्तिगत और सामाजिक क्षेत्र में उस कल्पना का अमल किस तरह किया जाय, यह बताना चाहता हूँ।" बापू का यह कथन केवल नम्रता ही नहीं, बल्कि वस्तुस्थिति भी थी। सिद्धान्त उनके ध्यान में आ गये थे और उन्हें जीवन में लाने की उनकी कोशिश चल रही थी। वे चाहते थे कि समाज यह कोशिश करे। समाज ने थोड़ी बहुत कोशिश भी की थी, फिर भी सबने मिलकर कोशिश की, ऐसा अभी भी नहीं हो सका। सारा समाज और सारा देश एक विचार का आधार लेकर समाज की रचना न बदल सका। फिर भी गांधीजी ने यह बात देश के सामने रखी। इसलिए गांधीजी जैसा, विचार की प्रत्यक्ष कृति समाज में किस तरह होगी, यह बतानेवाला मनुष्य हममें हो गया। उन्हें आपमें से बहुतों ने देखा है। कुछ लोगों ने नहीं भी देखा होगा, पर उनका स्मरण और दर्शन कायम है।

एक के उपासक अनेक पंथ भी एक ही कोटि में

आज बापू की मृत्यु को दस साल हो गये। दस साल में सारी दुनिया कहाँ की कहाँ चली गयी है। विज्ञान जैसे-जैसे बढ़ेगा, वैसे-ही-वैसे समाज में बहुत फर्क होगा। आज सारा एशिया खंड जागृत है और सारी दुनिया आमने-सामने दो विभागों में बँटा है। फिर भी एक विभाग ऐसा रह गया है, जिसे लगता है कि हम आमने-सामने के पक्षों में से किसी भी पक्ष में दाखिल न हों और अहिंसा के लिए स्वतंत्र निष्ठा निर्माण करें, तभी हम बचेंगे। किन्तु देखा जाय तो आज रूस और अमेरिका ये दो पक्ष आमने-सामने या भिन्न-भिन्न कहे जाते हैं। पर दोनों एक ही पक्ष के हैं। हम भी उसी पक्ष में हैं, यह समझने की जरूरत है। "समाज की रक्षा सेना से ही हो सकती है" यह कहनेवालों में रूस, अमेरिका और हम तीनों शामिल हैं। हम सबका आधार एक ही है। हम सब एक ही देवता के उपासक हैं, फिर भले ही हममें अलग-अलग पक्ष हों, जिस तरह कि रामजी के ही दो उपासकों में अलग-अलग पक्ष होते हैं।

पुराने पंथों की दो रोचक मिसालें

कल ही मुझसे कहा गया है कि सहजानंद के दो पंथ हैं। एक है वडतालवाला और दूसरा करतालवाला। एक मानता है साक्षात् नारायण को तो दूसरा स्वामीनारायण को। किन्तु दोनों मिलकर एक ही पक्ष में होते हैं। फिर भले ही दोनों की आपस में न बनें। शायद आपको मालूम होगा, चैतन्य महाप्रभु जब उड़ीसा गये तो उन्होंने वहाँ एक सन्त पुरुष जगन्नाथ दास का बहुत मान किया। जगन्नाथ दास चैतन्य महाप्रभु के पंथ के नहीं थे। वे वैष्णव थे, स्वच्छ और निर्मल पुरुष थे। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने उनको बहुत मान दिया। चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्हें लगा कि हमारा सारा महत्त्व मिट गया। इसलिए वे उनसे कहने लगे कि 'गुरुजी, आप यात्रा के लिए आयें तो अच्छा हो।' चैतन्य महाप्रभु ने जवाब दिया कि "मैंने यात्रा तो बहुत की, अब तो जगन्नाथ-पुरी में ही बैठने का विचार है" यह सुनकर कुछ शिष्य नाराज होकर निकल गये। वे वहाँसे वृन्दावन गये। वे वैष्णव थे, इसलिए वैष्णवभक्ति तो छोड़ नहीं सकते थे। इसलिए वहाँ उन्होंने स्वतंत्र आश्रम चलाया और उसमें थोड़ा-सा फरक किया। एक संप्रदाय गाता है—"हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे" तो दूसरा गाता है—"हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।" दोनों पंथ में इतना ही फर्क था कि एक राम का नाम लेता था तो दूसरा कृष्ण का। शायद आपने उड़ीसा में नाम सुना होगा—"हरेकृष्ण मेहताब।" इस तरह से दो विभाग हो गये। किन्तु अन्ततः वे वैष्णव संप्रदाय के ही तो लोग थे। इसी तरह अमेरिका, रूस, फ्रान्स, पाकिस्तान ये सारे भले ही एक-दूसरे से अलग माने जाते हों, किन्तु सबका पन्थ एक ही है और वह पन्थ है "हिंसा देवी ही रक्षण देवी हैं।"

आज समाजवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, फैसिज्म, इन सभी वादों का और कल्याण-राज्य का भी यही निश्चय है कि जीवन में सब कामों में प्रेम और करुणा चाहिए, किन्तु रक्षण के लिए ये काम नहीं देते। रक्षण के लिए तो शस्त्रबल ही चाहिए। मुझे कहने में दुःख होता है कि लगभग ऐसा ही निश्चय गांधीवालों का भी है। वे कहते हैं कि "आज की स्थिति में तो सेना ही चाहिए। जब यह स्थिति न रहे तो सरकार सेना से मुक्त हो सकती है।" कम्युनिस्ट भी तो यही कहते हैं कि आखिर तो हिंसा मिटनी चाहिए और मिटेगी। आखिर में सत्ता नहीं रहेगी। किन्तु इसके लिए अभी तो मजबूत राज्य बनाना ही होगा और उसके लिए उत्तम सेना तथा आधुनिक शस्त्रास्त्र चाहिए। फिर हममें और उनमें फर्क कहाँ रहा? सेना रखने से सत्य को अवकाश कम रहता है और सत्य-अहिंसा ये दोनों स्वाभाविक तौर पर साथ-साथ ही रहते हैं। यदि हम अपनी अहिंसा में सेना की गुंजाइश रखेंगे तो सत्य में असत्य को भी रखना होगा। इसलिए अहिंसा का विचार माननेवालों का, जो एक ओर गौतम बुद्ध का चित्र और दूसरी ओर गांधीजी का चित्र रखते हैं, कर्तव्य है कि समाज-रचना में परिवर्तन कर दिखायें और समाज में स्वतंत्र जन-शक्ति खड़ी कर सैन्य के बिना विकेन्द्रित राज्य चलाकर बतायें। जबतक हम उसके पीछे अपनी सर्वस्व शक्ति खर्च नहीं करते, तबतक रक्षण-शक्ति सेना की ही रहेगी। इसलिए हमारा सारा प्रयत्न ऐसा ही होना चाहिए कि समाज में जल्दी-से-जल्दी जन-शक्ति का स्थान खड़ा हो जाय और लोग सेना और पुलिस की मदद के बिना ही अपना-अपना कारोबार चला सकें।

भगवान भी हमारे अनुकूल

भगवान क्या चाहता है, यह तो मैं जानता हूँ। इसलिए मैं कहता हूँ कि हमारी जरूर चलेगी। अगर भगवान सारे विश्व का संहार चाहता तो मुझ जैसे मनुष्य को अहिंसा पर कायम रखने की बुद्धि ही न रह पाती। यादव-युद्ध और भगवान के परधाम जाने की कथा पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान को जब संहार की प्रेरणा होती है तो एक भी मनुष्य

ऐसा नहीं बचता, जिसे वह प्रेरणा न हो। किन्तु मैं देखता हूँ कि उससे मैं तो बच गया हूँ और दूसरे भी कुछ लोग बचे हैं। इसीलिए निःसन्देह मैं मानता हूँ कि भगवान अभी सृष्टि का संहार करना नहीं चाहता। अतएव आज हम सब अहिंसा का काम कर सकते हैं।

इतना ही नहीं, यदि हम अहिंसा को दृष्टि में रखकर समाज-रचना करने का प्रयत्न करें तो भगवान हमारे लिए अनुकूल ही होगा। इसका कोई दूसरा प्रमाण खोजने की जरूरत नहीं। भगवान एक ओर मुझ और आप जैसों को गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी जैसे मित्रों की, अहिंसा की उपासना की बुद्धि देता है और दूसरी ओर ऐसे शस्त्र निर्माण कर रहा है तो मनुष्य के सामने यही सवाल स्पष्ट खड़ा हो जाता है कि या तो अहिंसा को स्वीकार करो या सब लोग मिट जाओ। मुझे यह देख विचित्र बल प्राप्त होता है और लगता है कि मानो सारी सृष्टि मेरी मुट्ठी में है। इसे मैं जैसा आकार देना चाहूँ, दे सकता हूँ।

अहिंसा में दृढ़ विश्वास रखिये

आज सारी सृष्टि का प्रवाह, परमेश्वर के संकल्प का प्रवाह हमारे लिए है। ऐसी श्रद्धा रखकर और परमेश्वर के हाथ के औजार बनकर हम लोग कुछ करेंगे तो भारत और विश्व में निश्चय ही एक स्वतंत्र शक्ति खड़ी कर सकेंगे। केवल अहिंसा पर विश्वास रखना चाहिए। अहिंसा में किसी तरह का आपसी समझौता नहीं होना चाहिए। रक्षण के लिए सेना बिलकुल नहीं चाहिए। इसके लिए हम गाँव-गाँव में शांतिसेना खड़ी करें। ग्रामदान की बुनियाद पर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करें। हर गाँव का कारोबार गाँववाले स्वयं सम्भालें। गाँव का शिक्षण, रक्षण और पोषण की व्यवस्था गाँववाले ही करें। उनका मुख्य आधार परस्पर सहकार ही रहे। इस तरह एक-एक गाँव में करेंगे तो हम सारे भारत को बचा सकते हैं। यदि हम सारे भारत में यह कल्पना फैलायें तो वह इसे सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक है। मैंने इन साढ़े सात सालों में सर्वत्र यही देखा है। मेरी सभाओं में हजारों की संख्या में लोग आते और शांति से मेरे विचार समझने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें दूसरे किसी भी तरह से प्रेरणा या उत्साह नहीं मिलता। अगर हम अभी हिम्मत और विश्वास रखें कि हमारा काम प्रभु-प्रेरित है तो हमारे हाथ में निश्चय ही एक शक्ति आयेगी।

भगवान हमारे पीछे

अवश्य ही आज हमारे हाथ में कोई शक्ति नहीं, किन्तु हमारा काम तो परमेश्वर ही करनेवाला है। हम तो सिर्फ उसके हाथ के औजार हैं। भगवान ने अर्जुन से कहा था—"निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।" भगवान हमसे कहता है कि तुम कमजोर नहीं, दुर्बल नहीं, तुम्हारे पीछे तो मैं हूँ। उठो और काम करने लग जाओ तो तुम्हारी विजय ही है। इस तरह अपने पीछे वह बोल रहा है। हम अपने अन्तर में उसकी यह आवाज सुनें।

कुरान की एक कहानी

कुरान में एक कहानी आती है। एक वक्त मुहम्मद पैगम्बर अपने दो अनुयायियों के साथ जा रहे थे। उनके पीछे एक बड़ी भारी सेना उन्हें पकड़ने के लिए जा रही थी। जब उन्होंने देखा कि सेना एकदम नजदीक आ गयी और अब हमला कर ही देगी तो वे तीनों एक गड्ढे में उतर गये। अनुयायी घबड़ा गये तो पैगम्बर ने उनसे कहा—"हम तीन नहीं, चार हैं और वह चौथा सबसे श्रेष्ठ और जबरदस्त है। वही हमारे साथ है, पर दीखता नहीं। फिर भी हम तीन नहीं, चार हैं, यह ध्यान में रखो।" इसी तरह भले ही हम कम संख्यावाले और कमजोर दीखते हों, किंतु हमारे पास जो बल और प्रेरणा है, वह दूसरे किसीके पास नहीं है। यह समझने की जरूरत है। संहारक शस्त्र बढ़ाने से बल नहीं मिलता। जो लोग शस्त्र बढ़ा रहे हैं, वे भ्रमजाल में हैं और उनपर भगवान का वरदहस्त नहीं है। परमेश्वर का वरदहस्त उन्हींपर है, जिन्हें शस्त्र का जरा भी आधार नहीं। इस तरह अगर हममें विकेन्द्रित समाज-रचना करने की हिम्मत हो तो उसके लिए भगवान का बल हमारे पीछे है ही। ईसा मसीह का एक प्रसिद्ध वाक्य है कि 'ब्लेस्ड आर दी पीस-मेकर्स' (जो शांति के लिए काम करते हैं, वे धन्य हैं)। इस तरह जो लोग काम करते हैं, उनपर भगवान हमेशा कृपा करेगा।

मेरी सरकार की सरकार

मुझे लोग बहुत बार सवाल पूछते हैं कि इतने बड़े राजनैतिक पक्ष हैं और उनमें हम न जायँ और अपना ही एक स्वतन्त्र पक्ष खड़ा करें। हमारे आदमी सरकार में जायँ तो हमारी आवाज वहाँ पहुँच सकती है। भले ही हम स्वयं वहाँ न जायँ, किंतु हमारे लोग जायँ और हमारी बातें समझायें तो क्या यह अच्छा नहीं होगा? मैं कहता हूँ कि भाई, यह बात तो मैं समझता ही नहीं। मैं पार्लमेण्ट में जाता और वहाँ मेरे व्याख्यान का जितना असर होता, उससे बहुत ज्यादा असर तो तब होता है, जब लोगों के बीच काम करता हूँ। इसकी जरा भी कीमत नहीं। लोक-जागृति का और लोक-शक्ति का आधार लेकर ग्राम-स्वराज्य लाने की बात कहते समय मेरे शब्दों में जो ताकत आती है, वह पार्लमेण्ट में नहीं आयेगी। अगर मैं पैरोल पर छूटकर काम करूँ तो पार्लमेण्ट में जो बातें हुई, उसका असर लेकर समाज में काम कर सकूँगा। यह मानना मूर्खता ही साबित होगी। इसलिए मेरा तो सरकार की सरकार के साथ ही सीधा सम्बन्ध है। आखिर वह सरकार की सरकार कौन है? वह दिल्ली या बम्बई में नहीं है, क्योंकि वह तो नौकर है। वह सरकार तो मेरे सामने बैठी है। आप सब लोग जो मेरे सामने बैठे हैं, वे ही मेरे लिए सरकार की सरकार हैं। जब कि मैं अपनी सरकार से यही विचार समझाता हूँ तो उसका महत्त्व ही क्या है? इसलिए मैं यही मानता हूँ कि स्वतंत्र जन-शक्ति का विकास करें और इसके लिए प्रोत्साहित होकर काम में लगें।

गांधी-विचार का गलत अर्थ न करें

हमारे पीछे भगवान का बल है और गांधीजी ऊपर से देख रहे हैं कि हमारे शिष्य और अनुयायी इस दिशा में क्या कर रहे हैं। हमारी सरकार भी गौतम बुद्ध और गांधी का नाम लेती है। ऐसी स्थिति में हम यह अहिंसा और प्रेम का काम न करें तो वह कहाँ तक ठीक कहा जायगा? आज गांधीजी का नाम तो जो उठता है, वही लेता है, पर उनके अनुसार काम नहीं करता। यहाँ जो भी काम होता है, शुरू में गांधीजी का नाम लिया जाता है। राइफल क्लब खोलना हो तो भी गांधीजी का नाम लेकर शुरू होता है। इस तरह उन्होंने सब धर्मों के साथ समझौता कर लिया है। वे कहते हैं कि धर्म तो व्यावहारिक होना चाहिए। याने ऐसा धर्म, सारे धर्म को साफ

कर दे, ऐसा सुविधावाला धर्म, जो अपनी सुविधा के अनुसार हो। मतलब यह कि धर्म किसी भी तरह की असुविधा उठाने के लिए तैयार नहीं। किन्तु हम देखते हैं कि सभी धर्मवाले क्षमा, अहिंसा आदि की दुहाई देते हैं, किन्तु वे सभी रक्षा के लिए सेना की आवश्यकता मानते ही हैं। दूसरे सारे तो भले ही ऐसा कुछ करें, पर अगर गांधीवाला भी इसी तरह करे तो गांधीजी आये और गये, सारा व्यर्थ ही जायगा। यदि हम गांधी-विचार का ऐसा अर्थ करेंगे तो वह गांधीजी पर बहुत अन्याय होगा।

मेरा यह दावा नहीं कि बापू को मैं ही समझता हूँ, दूसरे नहीं। यथासंभव मैं बापू का नाम ज्यादा नहीं लेता। जो कुछ कहता हूँ, अपने ही नाम से कहता हूँ। किन्तु क्या करूँ, आपने सामने ही गौतम बुद्ध और गांधीजी का चित्र रखा है, इसलिए मुझसे कहे बिना नहीं रहा जाता। गौतम बुद्ध के हाथ में राज्य था। फिर भी उन्होंने सत्ता के जरिये समाज-रचना में परिवर्तन करने की नहीं सोची। उन्होंने राज्य-परित्याग ही किया, क्योंकि उन्हें दर्शन हो गया था कि जबतक करुणा-शक्ति न जगेगी, तबतक दूसरी कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो समाज-रचना में परिवर्तन ला सके। अगर सत्ता द्वारा समाज में क्रांति हो सकती तो वे राज्य क्यों छोड़ते? आप लोग इसपर विचार कीजिये। ईश्वर से यही प्रार्थना है वह आप सबको इसपर विचार कर उसी तरह काम करने के लिए सद्बुद्धि दे। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

सियालज (सूरत) १-१०-'५८

तीन हजार शान्ति-सैनिकों की माँग तीन लाख से पूरी करें

जबसे मैं गुजरात में आया हूँ, तभीसे मुझे एक विशेष भक्ति-भाव का दर्शन हो रहा है। सर्वोदय-विचार जानने के लिए लोग बहुत उत्सुक दिखाई देते हैं। लड़के-लड़कियाँ छोटे-बड़े लोग, शहरवाले और गाँववाले—सभीके मन में यह उत्सुकता दीखती है।

सरकार और राजनैतिक दलों से निराशा

आज जो दूसरे-तीसरे विचार और सरकार के मार्फत काम चलते हैं, उनका उद्देश्य अच्छा होने पर भी परिणाम उतना अच्छा लोगों को मालूम नहीं होता। गाँव के जिन लोगों को मदद की खास जरूरत होती है, उन्हें सीधी मदद नहीं मिलती है। इसीलिए सरकारी योजना में लोगों का ज्यादा उत्साह नहीं दीखता। उसके सिवा अलग-अलग राजनैतिक संस्थाएँ हैं और हर पक्ष में बहुत-से लोग हैं। सारे पक्ष घोषित कर रहे हैं, पर उनकी घोषणा प्रजा को आकर्षित नहीं करती। कारण प्रजा मनुष्यों से बनी है, पक्षियों से नहीं। पक्षी याने पंखवाला। पक्षी लोगों के बीच जाते हैं और उनसे कुछ बातें करते हैं, पर लोग इनपर भरोसा नहीं रखते, क्योंकि चुनाव के बाद ये पक्षी कहाँ उड़ जाते हैं, इसकी कोई खबर नहीं रहती। सिवा इन लोगों के मुँह से हमेशा निन्दा सुनकर लोगों को निराशा हो जाती है। एक पक्ष दूसरे पक्ष की हमेशा आलोचना और निन्दा किया करता है। जनता को दोनों की निन्दा सुननी पड़ती है। इस तरह इनसे भी लोक-कल्याण की आशाएँ भंग हो गयी हैं। आज हिन्दुस्तान में कोई भी राजनैतिक पक्ष ऐसा नहीं, जिसके बारे में लोगों को अत्यन्त सहानुभूति हो। अब दूसरा पक्ष अच्छा है, यह समझकर दूसरी बार दूसरे को वे मत दे दें, यह अलग बात है। वे मानते हैं कि यह भी खराब है और वह भी खराब, लेकिन ये लोग कम खराब हैं। इस तरह राजनैतिक पक्षवाले भी गये और सरकार भी गयी। फिर लोगों के लिए आशास्थान कहाँ रहा और क्या रहा?

रचनात्मक कार्यकर्ताओं से भी आशा नहीं

जो लोग रचनात्मक कार्य करते हैं, उनकी भी वैसी ही दयनीय दशा है, जैसे किसी अनाथ विधवा की। बेचारी अनाथ विधवा जैसा जीवनयापन करती है और उसे जैसा काम करना पड़ता है, वैसे ही ये व्रत का पालन करते हैं। वैसे देखा जाय तो विधवा सारे समाज को जगा सकती है। आध्यात्मिक क्रान्ति ला सकती है, अगर उसमें दैवत हो, शक्ति हो, हिम्मत हो। किन्तु हमारे समाज में साधारण स्थिति यही है कि स्त्री का आधार (पति) मिट जाने पर वह व्रत का पालन करती हुई शुष्क जीवन जीये। इसी तरह रचनात्मक कार्यकर्ताओं का भी नियमित कातना, प्रार्थना वगैरह व्रत हो गया है। ये जितना करते हैं, उसके लिए समाज में गौरव, आदर भी है। फिर भी इनसे कुछ बनने या चलने की लोग आशा नहीं करते। इनका आश्रय लेकर संकट से मुक्त हो जायँगे, ऐसी आशा लोगों में नहीं है। फिर समाज के लिए आश्रय क्या रहा?

भूदान-ग्रामदान ही आशा का स्थान

जब लोग देखते हैं कि भूदान, ग्रामदान में चालीस-पचास लाख एकड़ जमीन मिल सकती है तो मानते हैं कि ऐसी कोई शक्ति देश में प्रकट हो रही है। उसीसे उन्हें इससे आशा मालूम होती होगी। जबसे ग्रामदान आरम्भ हुआ, तबसे लोगों में बहुत आशा उत्पन्न हुई है कि गांधीजी के जाने के बाद गांधी-विचार की दृष्टि से देश में अगर कोई भी काम चलता है तो वह यही है। इससे कुछ निकलेगा, राष्ट्र बचेगा और गरीब लोगों को राहत मिलेगी। ऐसी आशा हो गयी है। इसलिए असंख्य नर-समुदाय अत्यन्त शान्त वृत्ति से सुनने के लिए आता और सुनता है। यह भक्ति, यह श्रद्धा, आशा, उत्साह, उत्सुकता देखने को मिलती है तो मेरा बल बढ़ता है। मैं जानता हूँ कि यह आशा मेरे लिए नहीं, जो मुझे बुलवाता और इन पैरों से गाँव-गाँव घुमाता है, उसी विचार के प्रति यह श्रद्धा है। खास कर गुजरात में यह विशेष तरह से देखने को मिलती है।

गांधीजी अमर हैं

गांधीजी के जाने के बाद एक साल चर्चा चली कि गांधीजी की मृत्यु कब हुई? इसपर एक ग्रामीण भाई ने तुरन्त जवाब दिया कि "क्या कभी मनुष्य की भी मृत्यु होती है?" "गांधीजी मर गये" यह मानने के लिए वह तैयार नहीं था। "ऐसे मनुष्य कभी मरते नहीं" यह कहकर वह गाँववाला उपनिषद् ही बोल गया। विचार के चिह्न के रूप में दुनिया में आनेवाला मनुष्य जब विचार रख चला जो जाता है, तब वह अधिक जोर से काम करता है। गांधीजी हमारे बीच थे तो काम में जितना जोर आता था, उससे अधिक जोर आज उस काम में आता है।

परिणामस्वरूप लोग अत्यन्त शान्ति से सुनते हैं। इतनी शांति से गांधीजी की भी नहीं सुनते थे। अब तो गांधीजी शरीर में नहीं रहे हैं, वे अशरीर, अमर हो गये। भारत में यह मान्यता है कि गांधीजी शरीर में नहीं रहे, पर "प्रभु साथे विराजे रे" प्रभु और प्रभु के भक्त सर्वत्र विराजमान हैं। इसीलिए आज गांधीजी बहुत जोर से काम कर रहे हैं।

गांधीजी का प्रभाव चर्मचक्षु देख नहीं सकते

फिर भी अभी वह लोगों के हृदय में बैठा नहीं है। एक न्यूयार्कवाला भाई मुझसे कहता था कि "क्या आज दिल्ली की सेना, कोर्ट-कचहरी में कहीं भी गांधीजी का असर दीखता है?" मैंने उससे कहा कि गांधीजी का असर चर्मचक्षु देख नहीं सकते। वह इतना सूक्ष्म है कि भारत के खून और हड्डी में व्याप्त हो गया है। इसके लिए गांधीजी जब गये, तब उनमें कैसी भावना थी, यह देखना चाहिए। प्रार्थना में जाने के लिए देर हो गयी थी। सरदारजी बापू से मिलने आये थे। बातें बहुत लम्बी चलीं। कभी भी प्राथना के लिए देरी नहीं होती थी। इसलिए अपराध और भक्ति की भावना लेकर वे भगवान से मिलने जा रहे थे। उस दिन प्रार्थना की भावना दूसरे किसी भी दिन की भावना से जरा तीव्र थी। क्योंकि उसमें अपराध की भावना भी थी कि प्रभु की प्रार्थना में देर हो गयी है। इस तरह वे वहाँ पहुँचे। इतने में गोली छाती में लगी और वह अन्दर बैठ गयी। उनके मुँह से पहला ही शब्द निकला, "हे राम"। तुलसीदास ने गाया है कि मुनि और योगी जन्मभर कोशिश करते हैं तो भी अन्तकाल में भक्तिभावपूर्वक मुख पर राम-नाम आने का विश्वास नहीं। किन्तु गांधीजी के मुख से "हे राम" ये शब्द निकले। जो शब्द सारे भारत की जनता सान्त्वना के लिए उच्चारण करती है, वे ही शब्द उनके मुँह से निकले। वे अक्षरशः जनता की भावना में एकरूप हो गये थे। मेरे जैसा वेदान्ती हो अथवा होता तो "ओम्, ओम्" बोलता। बापू ने भी आगाखान महल में बा की समाधि पर "हे राम" और महादेव भाई की समाधि पर "ओम्" लिखा है। मुझे निश्चित याद नहीं, पर जहाँ तक याद है, ऐसा ही है। फिर भी अन्तिम समय उनके मुँह से तो "हे राम" ही निकला, जो सारी जनता के मन में है। "जनता से मैं जरा भी ऊँचा हूँ", ऐसी भावना उनमें थी ही नहीं। वे जनता के दुःख से दुःखी होते थे।

मनुष्य और महात्मा के लक्षण

लोग मानते हैं कि महात्मा दूसरे के दुःख से दुःखी होते हैं। किन्तु दूसरे के दुःख से दुःखी होना महात्मा का नहीं, मनुष्य का लक्षण है। अपने दुःख से दुःखी और अपने सुख से सुखी होना तो जानवर का लक्षण है। दूसरे के दुःख से दुःखी होना और सुख से सुखी होना, यह मनुष्य का ही लक्षण है और ऐसा लक्षण अगर बापू में था तो इसमें उनकी कोई विशेषता नहीं है। उनकी तो यही विशेषता है कि वे सबके पापों से पापी होते थे। अपने ऊपर सबके पापों का आरोप करते थे, सारा बोझा अपने सिर पर ले लेते थे। नरसी मेहता ने कहा है—"नाम लेता मन नींद आवे।" तो क्या नरसी मेहता को निद्रा आती थी? नहीं, वे जब कीर्तन करते तो श्रोताओं को नींद आती थी, पर वह नींद मुझे आती है, यह समझकर उन्होंने वह दोष अपने सिर पर ले लिया। यही उनका महात्मापन है। जो मनुष्य दूसरे के दुःख से दुःखी हो, वह साधारण मनुष्य है। किन्तु जो "दूसरे के पाप से मैं पापी हूँ" ऐसी भावना रखे, वह मनुष्य विश्वात्मा, जनतात्मा है।

गुजरात की यह उदात्त भावना

ऐसे महात्मा हमेशा लोगों के हृदय में रहते हैं। बापू भी ऐसे ही मनुष्य थे, जिनपर जनता के किसी भी पापपुण्य का परिणाम होता था, उसका प्रतिबिम्ब उनके हृदय पर अंकित भी हो उठता था। इसलिए बापू गये तो गुजरात और भारत के लोगों ने, खास करके गुजरातवालों ने माना ही नहीं कि वे गये। मेरे जैसा साधारण मनुष्य आता है तो वे लोग ऐसा मान बैठते हैं कि बापू आये हैं। "बापू का प्रतिनिधि" मानकर हमें पापों से मुक्त करते हैं। उपनिषद की यही प्रक्रिया है। "तुम अच्छे हो, पुण्यवान हो, ब्रह्म हो" यह कहकर उपनिषद हमें बचाता है। इसी तरह जब गुजरात की प्रजा मेरा उद्धार करने के लिए यह आशा देकर आती है कि "यह बापू का सन्देश लेकर आया है, बापू जो काम करते थे, वही यह करता है और बापू ने जो काम किया, उसीको हमें समझाता है" तो मुझे बहुत बल मिलता है और मेरा हृदय भर आता है।

अपना कारोबार दूसरों पर मत छोड़िये

आखिर बापू क्या कहते थे? अपना कारोबार दूसरों पर मत छोड़िये। अगर गाँववाले शहरों पर भाररूप हो जायँ, उनके बिना हम रह नहीं सकते, ऐसा मानने लगें, कल नेहरू न रहे तो हम क्या करेंगे, इस तरह व्याकुल हो जायँ तो क्या यह परतंत्रता है या स्वतंत्रता? पहले यही हुआ। जब अच्छे राजाओं का राज्य था तो लोग कहते थे कि "कितना कल्याणकारी राज्य है। माता-पिता के समान सेवा करता है। ऐसा राजा युग-युग जीये।" किन्तु ऐसा राजा जब मर जाता तो सारी प्रजा रोती थी। लेकिन लोकतंत्र के इस युग में भी अगर ऐसा ही हो तो यह बापू का स्वराज्य नहीं है। बापू की संगति में जो-जो लोग आये, सबको बापू ने जगाया।

"बड़े पुरुष" और "महापुरुष" में अन्तर

एक व्यक्ति ने कहा कि "जो लोग बड़े लोगों के हाथ में रहते हैं, उनका विकास नहीं होता। जैसे एक पेड़ की छाया में दूसरा पेड़ होने पर वह बड़ा नहीं हो पाता, वैसे ही बापू के पास रहे हुए लोगों का अधिक विकास नहीं हो सका है।" मैंने उनसे कहा कि "बड़े पुरुषों में और महापुरुषों में फर्क है। बड़े मनुष्य याने बड़ा स्वार्थी मनुष्य। बड़ा वृक्ष सब पोषण स्वयं ही खा लेता है। भले ही उसकी छाया में बसे वृक्ष को कुछ भी पोषण न मिले। बड़े वृक्ष के नीचे होने से वह नहीं बढ़ता, यह ठीक ही है। लेकिन महापुरुष तो वत्सल-गाय जैसे होते हैं। गाय स्वयं कड़बा और घास खाकर सुंदर दूध बनाकर अपने बच्चों को पिलाती और सर्वोत्तम पोषण देती है। महापुरुष भी इसी तरह के हुआ करते हैं। फिर बापू की संगति में जो लोग रहे, वे जैसे के तैसे नहीं रहे। जैसे थे, बिलकुल भिन्न हो गये। यही उनकी कला है। इसलिए बापू के लिए हिन्दुस्तान में पचीस-पचास शक्तिशाली लोग काम करनेवाले हो गये। यह संख्या कम ही कही जायगी, पर बापू के पास वे आये थे और उनका निःसंदेह विकास हुआ। छोटे-छोटे लड़के, जिनकी योग्यता दुनिया में कुछ नहीं थी, उन्हें भी बापू "तू यह कर सकता है" यह कहकर आगे ले आये। कर्नाटक के गंगाधरराव देशपाण्डे ने बापू के पास माँग की कि

हमारे प्रान्त में खादी के काम के लिए हमें एक मनुष्य चाहिए। गांधीजी ने "कृष्णदास गांधी" का नाम सुझाया, जिनकी उम्र उस समय सिर्फ १५ साल की थी। लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ कि इतना छोटा-सा लड़का इतने बड़े प्रान्त का काम कैसे सँभालेगा? फिर भी बापू को विश्वास था कि कृष्णदास यह जरूर कर सकेगा। जिस तरह मछली पानी में तैरती है, उसी तरह खादी में रहनेवाले इतना प्रचार नहीं कर सकते। आपने देखा कि कृष्णदास ने यह काम सहज तरीके से किया। इसी तरह दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार के लिए गांधीजी ने देवदास को भेजा था। आखिर ये छोटे-छोटे लड़के ही तो थे। फिर भी उनपर भरोसा रखकर बापू ने उनको भेज दिया। वे रामजी के बाण थे, इसलिए उनकी गति बढ़ गयी।

गांधीजनों का कर्तव्य

मैं कहना यह चाहता था कि दूसरे के दुःख से दुःखी होना महात्मा के लक्षण नहीं। ऐसे लोग अगर बिरले हों तो इसका अर्थ यही होगा कि मानवता मर गयी। यह मानवता का लक्षण नहीं है। गांधीजी ने हम जैसे लोगों में शक्ति की स्थापना की। उससे कुछ ज्यादा न कर सके। परन्तु लोग इसी तरह मानते हैं कि हमारे तरफ ही देखा जाता है। फुटबाल के खेल में फुटबाल एक हाथ से दूसरे हाथ में जाता है। उसे अपने ही हाथ में पकड़ रखें तो खेल बन्द हो जायगा। इसी तरह जब लोग मुझसे कहते हैं कि "यह गांधीजी का मनुष्य आया है" तो तुरन्त ही मैं यह पदवी आपकी ओर रवाना करता हूँ। मुझे आप गांधी-जन मानें और खुद दूसरे जन बने रहें तो काम नहीं होगा। इसके बदले यह कहिये कि यह भी "गांधी-जन है और हम भी गांधी-जन हैं।" लेकिन आप यह कहकर कि "विनोबा गांधीजी का काम करता ही है, हमें कुछ करना नहीं है, हमारा काम तो स्वागत करनेमात्र से ही पूरा हो जाता है" स्वयं गांधी-जनत्व से मिटकर मुझे गांधी-जन बनायें तो यह भी नहीं चलेगा। गांधी-जन की पदवी मैं आपकी तरफ फेंकता हूँ। इस तरह अगर आपको यह खेल चालू रखना है तो आप उसे मेरी ओर वापस मत भेजिये, दूसरे की ओर रवाना कीजिये। इस तरह करेंगे तो गांधी-जनों की जमात बढ़ेगी और एक-दूसरे पर गांधी-जन का आरोप कर खेल चालू रख सकेंगे।

ग्रामदान ही एक उपाय

उसके लिए युक्ति है ग्रामदान। ग्रामदान में जीवन का स्तर नीचे होगा, ऐसा डर रखने की जरूरत नहीं। ग्रामदान का अर्थ है गाँव के सारे लोग मिलकर गाँव का विचार करें और जिस तरह गाँव के लोगों का समाधान हो, उस तरह गाँव की व्यवस्था करें। फिर गाँव के जीवन का बँटवारा किस तरह किया जाय, यह सारा ग्रामसभा ही तय करेगी। सारे गाँव में जमीन की मालकियत ग्रामसभा के नाम पर रहेगी। गाँव के लोग मिलकर सबके समाधानपूर्वक सब काम करेंगे। यही ग्रामदान का हेतु है। ऐसी भी बात नहीं है कि हर गाँव में ग्रामदानी गाँव का नमूना एक जैसा हो। ऐसा तो सरकारी व्यवस्था में होता है। हर गाँव के स्कूल में "पैटर्न" एक जैसा ही होता है। इससे अगर एक स्कूल का नमूना बिगड़ जाय तो बाकी के सारे स्कूल के नमूने बिगड़ जायँगे। जिस तरह बेकरी में एक ब्रेड बिगड़ी तो बाकी की सारी बिगड़ जाती है। किन्तु घर में एक रोटी बिगड़ी तो एक ही बिगड़ती है। दूसरी सारी सुन्दर रह सकती हैं। इसी तरह ग्रामदान में हर गाँव के लोग अपने ढंग और अपनी परिस्थिति के अनुसार जो नमूना करना चाहें, वह कर सकेंगे और सबकी बुद्धि का स्वतंत्र विकास होगा। वह गांधीजी का ही विचार है। मैं आपको गांधीजी का ही विचार कहने के लिए आया हूँ। मैं गांधीजन हूँ, यह सच है, परन्तु उसके साथ-साथ मैं यह नहीं भूलता कि आप भी गांधीजन हैं। इसलिए आपको भी यह विचार उठा लेना चाहिए। यही आज आशा का स्थान है। दूसरे हर गाँव में लोग अपने पैर पर खड़े होकर अपने दिमाग से अपना काम कर सकते हैं। यह गांधीजी की वृत्ति ग्रामदान में रही है।

शान्तिसैनिकों की माँग

आप देखते हैं कि अपना यह देश बहुत बड़ा देश है। उसमें बहुत-सी जातियाँ, भाषाएँ, धर्म, पक्ष, उपपक्ष, मतवाले रहते हैं। इतने बड़े विशाल देश में इन सारी चीजों का वैभव हो सकता है। "सा रे ग म प ध नि सा" इस तरह सात स्वर एकत्र हो जायँगे तो संगीत हो सकेगा। केवल सा-सा रहेगा तो संगीत निर्माण नहीं होगा। फिर भी इन सप्त स्वरों का सुमेल सधना चाहिए। नहीं तो राग बेसुरा हो जायगा। अतः सर्वप्रथम इनमें सुमेल साधना है। इसके लिए शान्तिसेना खड़ी करनी होगी। इस विचार को मैं सारे भारत में फैलाना चाहता हूँ। इतने बड़े देश में झगड़े के बहुत प्रसंग आते हैं। उनको मिटाने के लिए तुरन्त ही पुलिस और सेना भेजी जाती है। फिर पत्थरबाजी और गोलीबार आदि चलता है। यह सारा हमें शोभा नहीं देता। गांधीजी के गुजरात में और गांधीजी, गौतम बुद्ध और भगवान श्रीकृष्ण के भारत में यह नहीं होना चाहिए। इसीलिए शांति-सेना में जवान लोगों को दाखिल होना चाहिए।

दान में उदारता ही प्राण

माँगनेवाले एक माँगते हैं और देनेवाले लोग बहुत मिल जाते हैं तो उससे मजा आता है। उससे देश की ताकत भी बढ़ सकती है। भगवान सृष्टि में भी यही करता है। अनाज का एक दाना बोता है तो उसे सौ दाने मिलते हैं। इस तरह मैंने गुजरात के पास तीन हजार शान्तिसैनिकों की माँग की है तो गुजरात मुझे तीन लाख शान्तिसैनिक दे। सरकारी नौकरी का विज्ञापन होने पर पाँच जगहों के लिए पाँच हजार आवेदन-पत्र आते हैं तो मेरी तीन हजार की माँग पर आप मुझे कंजूस होकर दो हजार शान्तिसैनिक दें, यह गांधीजी के गुजरात को शोभा नहीं देता। अतः मैंने तीन हजार की माँग की है तो आपको तीन लाख देना चाहिए। यह हो सकता है, ऐसी श्रद्धा जनता पर मैं रखता हूँ और माँग करता हूँ तो यह हो सकेगा।

जनता कल्पवृक्ष

जनता कल्पवृक्ष जैसी है। एक समय एक मनुष्य कल्पवृक्ष के नीचे जाकर बैठा तो उसे सुंदर छाया मिली और उसे खूब आनन्द हुआ। उसकी सारी थकान चली गयी। किन्तु पेट में भूख इतनी थी कि उसे लगा कि अभी पंचपकवान खाने को मिले तो कितना अच्छा हो। इस तरह विचार करते ही पंचपकवान की थाली उसके सामने आ पड़ी। उसने पेटभर खाया। फिर उसे लगा कि पीने के लिए ठंडा पानी मिले तो कितना अच्छा हो। इतने में ठंडा पानी उसे मिल गया और उसने पीया भी। किन्तु यह देखकर बाद में उसके मन में आया कि आखिर यह भूत तो नहीं है! फिर क्या था, सामने भूत खड़ा हो गया। आँखों के सामने भूत को देख उसे डर हो गया कि कहीं यह भूत

मुझे खा न जाय ! और भूत ने तुरन्त उसे खा ही लिया। सारांश कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर जैसी कल्पना करो, वैसी वह फलीभूत होगी। जनता के बारे में ऐसी कल्पना करो कि ये लोग तो आनेवाले ही नहीं हैं तो वैसा ही परिणाम आयेगा। अगर पूरी श्रद्धा रखकर लोगों के पास पहुँचेंगे और उनके पास रहनेवाली भक्ति-श्रद्धा का आवाहन करेंगे तो मैं कहता हूँ कि आपको बहुत लोग मिलेंगे। आप जितनी माँग करेंगे, उससे निश्चित ही ज्यादा लोग मिलेंगे। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

कालोल (पंचमहाल) २५-१०-'५८

श्रमनिष्ठा और करुणा जगायें

अभी दुखायल जी ने हमें एक सुन्दर गीत सुनाया। दुखायल जी केवल कवि नहीं, भूदान और ग्रामदान के एक कार्यकर्ता, सेवक भी हैं। पाँच-सात साल से लगातार यही काम कर रहे हैं और इस काम के साथ उन्होंने सिंधी और हिन्दी में उत्तम गीत लिखे हैं। आज सारे हिन्दुस्तान में उनके गीत फैल गये हैं। उनके गीत जिन्होंने सुने हैं, उन लोगों में चैतन्य का संचार न हो तो आश्चर्य होगा।

लोकसेवक आगे आयें

पंचमहाल जिले से मैंने यह माँग की है कि इस जिले में दो सौ सेवक लोकनीति के आधार पर खड़े हों। वे सारे जिले की सेवा करेंगे। उनके द्वारा ग्रामदान का विचार और हमारा साहित्य घर-घर पहुँच सकेगा। वे लोगों को शारीरिक दुःख में मदद दे सकते हैं। उन्हें कोई मानसिक दुःख हो तो उसमें भी वे अध्ययन और मनन कर आश्वासन दे सकते हैं। इसके लिए वे साहित्य-प्रचार करें। इस प्रकार की योजना इस जिले में होगी तो यहाँ और दूसरे स्थानों में भी जो रचनात्मक काम हुआ है, उसका मधुर फल देखने को मिलेगा। यहाँ जो सेवा हुई है, वह सामान्य कोटि की नहीं है। हिन्दुस्तान में ऐसे बहुत थोड़े जिले होंगे, जहाँ ऐसी मजबूत सेवा बरसों से चलती हो। ऐसे जिलों में पंचमहाल की गिनती होती है। इसलिए इस सेवा का परिपूर्ण फल हासिल करने का समय अब आ गया है। यह फल है ग्रामदान के आधार पर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना। अभी तक यहाँ जो बीज बोया गया है, जिस पौधे की आजतक सेवा की गयी है, उसका फल लाने के लिए आखिरी प्रयत्न बाकी है। वह अगर हम करते हैं तो इसमें से एक उत्तम और मधुर फल यहाँ भी जनता को मिलेगा। इसलिए मैं आग्रह और नम्रतापूर्वक अपने कार्यकर्ता भाइयों से आगे आने की माँग करता हूँ और आशा रखता हूँ कि यह काम जरूर होगा।

विषमता कैसे मिटे?

आज हालोल तालुके के कुछ भाई मुझसे मिलने आये थे। उनके तालुके में मैं नहीं जा सका, इसलिए वे ही यहाँ आये। उन लोगों ने मुझसे कुछ सवाल पूछे। उनका एक सवाल यह भी था कि जहाँ आज सारी दुनिया में सर्वत्र विषमता फैली है, वहाँ आपका यह आन्दोलन आर्थिक समता की स्थापना करने के लिए कितना समय लेगा, यह किस तरह होगा? वह होगा कि नहीं?

अपना यह आन्दोलन केवल आर्थिक स्थापना का नहीं है। इस आन्दोलन के मूल उद्देश्य में दो चीजें हैं, जो आज के युग के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं और जिनके बिना समता आनेवाली नहीं है। यांत्रिक पद्धति से आनेवाली समता मनुष्य को समाधानकारक नहीं होगी और वह सिद्ध भी नहीं होगी। आरोहण के कार्य में समता से ज्यादा इस चीज का महत्त्व है कि इसमें एक तो करुणा चाहिए और दूसरी श्रमनिष्ठा। इन दो चीजों का हम विकास करना चाहते हैं और इन दो शक्तियों की स्थापना करना चाहते हैं।

करुणा का विकास करें

दुनिया में करुणा का स्रोत, करुणा का झरना सूख गया है और मानव-समाज निष्ठुर बन गया है। यह जो निष्ठुरता है, वह हेतुपूर्वक नहीं स्वीकार की गयी है। वह हमें चिपक गयी है। अपनी जीवन-पद्धति ही ऐसी है कि जिससे करुणा पैदा ही नहीं होती, मत्सर ही पैदा होता है। आज के समाज में मत्सर प्रधान हो गया है। मत्सर को कभी आर्थिक स्वरूप दिया जाता है तो कभी स्पर्धा का नाम दिया जाता है। पारमार्थिक दृष्टि से देखें तो वह मत्सर ही है। हमारा ध्यान हमेशा ऊपर रहता है। दस हजारवाला एक लाखवाले की ओर देखता है और एक लाखवाला दस लाखवाले की ओर। इसीलिए मत्सर पैदा होता है। छोटे से लेकर बड़े तक सभी मत्सर करते हैं। जिनके पास सबसे ऊँचा अधिकार है, अच्छी सम्पत्ति है, मान-प्रतिष्ठा के साधन हैं, उन्हें भी समाधान नहीं, मत्सर है। एक योगी को दूसरे योगी का मत्सर होता है। तुलसीदास बहुत बड़े वैष्णव भक्त थे। वे काशी में रहते थे और भक्ति का प्रचार करते थे। लोगों को धर्म के भाव समझाते थे और रामायण गाते थे। परन्तु उन्हें एक घाट से दूसरे घाट पर, फिर तीसरे घाट पर जाना पड़ता था। क्योंकि दूसरे वैष्णव और दूसरे अलग-अलग संप्रदायवाले उनका मत्सर करते थे। क्योंकि उनकी सभा में तुलसीदास की सभा से कम आदमी (श्रोता) आते थे। इसलिए उन्हें मत्सर पैदा होता था और वे लोग तुलसीदास जी को भगाने की कोशिश करते थे। परन्तु तुलसीदास ठहरे निर्वैर पुरुष। जब लोगों को लगता था कि इन्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए तो एक घाट से दूसरे घाट पर वे चले जाते थे। ऐसा करते-करते आखिर वे काशी के आखिरी घाट, अस्सी घाट पर जा बैठे, जहाँ कोई नहीं आता था। मत्सर ऐसी वस्तु है। एक योगी को दूसरे योगी के लिए और एक भक्त को दूसरे भक्त के लिए, एक अधिकारी को दूसरे अधिकारी के लिए, एक कवि को दूसरे कवि के लिए, एक सामर्थ्यवान को दूसरे सामर्थ्यवान के लिए, एक संपत्तिवान को दूसरे संपत्तिवान के लिए मत्सर होता है। आज तो यह सार्वजनिक रोग ही हो गया है। इसके बदले में मनुष्य अगर नीचे देखने लगे, नीचे देखने की आदत डालें तो करुणा पैदा होगी। मुझसे ये लोग अधिक असुविधा में हैं, इसलिए इनकी कुछ मदद करनी चाहिए। ऐसे विचार जब आयेंगे, तब मत्सर नहीं होगा। यों करुणा उत्पन्न होगी तो अपने पास जो कुछ है, उसीमें से थोड़ा देने की तैयारी होगी। भूमिहीन, संपत्तिहीन के पास कुछ भी नहीं है और मैं आठ आना

कमाता हूँ, इसलिए मुझे कुछ देना चाहिए। मेरी थाली में जो कुछ थोड़ा-सा है, उसमें से मैं दूँगा। इस तरह अपने समाज की दृष्टि नीचे रहेगी तो एक-दूसरे की ओर करुणा से देखेंगे। प्रभु ने हमें दो हाथ दिये हैं तो हमें यह सोचना चाहिए कि जिसे हाथ नहीं है, उसे कितनी मुसीबत होती होगी। इस तरह ऊपर देखने के बजाय नीचे देखेंगे तो मत्सर के बदले करुणा पैदा होगी। हमें करुणा पैदा करने का कार्यक्रम करना है। वह इस भूदान-आन्दोलन से हो रहा है।

श्रम की महिमा बढ़ायें

दूसरी बात यह है कि आज दुनिया में श्रम की महिमा कम हुई है और पैसे की बढ़ी है। परिणामस्वरूप आज परिश्रम के बारे में न किसीको आदत रही है न आदर। जिन लोगों को शरीर-श्रम करना पड़ता है, उनका उसमें आदर नहीं है और जो लोग शरीर-श्रम नहीं करते हैं, उनका भी आदर नहीं है। किसान कहता है कि भले ही मुझे श्रम करना पड़ता हो, परन्तु मेरे लड़के को यह जीवन नहीं मिलना चाहिए। वह चाहता है कि अपने गाँव में स्कूल हो, जिससे उसका लड़का श्रम से बचे। इसका अर्थ यही है कि शरीर-श्रम के बारे में उसे निष्ठा नहीं है। उसे जबर्दस्ती करना पड़ता है, इसलिए कर रहा है। उसके मन में आदर नहीं है। समाज में भी उसका कोई आदर या इज्जत नहीं है। मैट्रिक पढ़ा हुआ लड़का भी चालीस साल के किसान को 'तू' कहता है। श्रम करनेवाले की तरफ हम हीन दृष्टि से देखते हैं। अपने समाज में करीब-करीब हजार साल से यह भावना चल रही है कि शरीर-श्रम की योग्यता कम है। अंग्रेजी शिक्षण के कारण समाज में दो वर्ग पड़ गये हैं। जो लोग ऊँचे वर्ग के हैं, वे और ऊँचे बन गये और बिलकुल काम न करना, कपड़े को जरा भी काला रंग न लगने देना, बिलकुल शुभ्र कपड़ा पहनना, इस तरह के विचार और आदत बन गयी है। जो लोग नीचे थे, वे इससे और नीचे हो गये। परिणामस्वरूप ब्राह्मण आदि लोगों का जो ऊँचा वर्ग था, जो हाथ से काम नहीं करते थे, जो संस्कृत आदि जानते थे, वे अपने को ऊँचे तो मानते ही थे, परन्तु अंग्रेजी सीखे, इसलिए और भी ऊँचा मानने लगे। दूसरी कोई खास जाति के लिए दिक्कत पैदा हो, ऐसा तो वे नहीं चाहते थे और उसमें जाति का कोई अपराध भी नहीं था। समाज का वातावरण ही ऐसा था, जिसके परिणाम से ऐसा बना। फिर अंग्रेजी शिक्षण का आर्थिक क्षेत्र में भी प्रवेश हुआ। कोई बी० ए० कोई एम० ए० हुआ तो उसको ज्यादा तनख्वाह मिलती थी। कोई उससे भी ज्यादा आक्सफोर्ड ग्रेजुएट होकर आया तो हजार रुपया भी चाहता था। वास्तव में उलटा होना चाहिए। जिन लोगों को बहुत पढ़ाया है, उनके पीछे समाज का बहुत खर्च हुआ है। इसलिए उन लोगों को कहना चाहिए कि हमें कम तनख्वाह दो तो हमारा काम चलेगा। हमारे ज्ञान की महिमा ज्यादा है। गिबन नाम के एक इतिहासकार ने 'काल आफ दी रोमन एम्पायर' नामक पुस्तक में लिखा है कि रोमन साम्राज्य में शरीर-श्रम-निष्ठा नहीं रही, लोग शरीर-श्रम भूल गये, तबसे रोमन साम्राज्य का पतन शुरू हुआ। आज तो अपने देश में विद्या की बिक्री होती है। इस स्थिति में सुधार होना चाहिए और यह अपना कार्य है।

साम्ययोग क्यों ?

शरीर-श्रम-निष्ठा और कारुण्य इन दो गुणों की स्थापना करना और प्रत्येक मनुष्य को कुछ-न-कुछ काम करके ही सामने आने की आदत डालने का प्रयत्न करना चाहिए। तब समता आयेगी। शरीर-श्रम और करुणा याने नीचे देखने की आदत। हमें इन गुणों की समाज में स्थापना करनी है। इसीसे समाज में समता स्थापित हो सकती है। सब लोग श्रम करनेवाले हो जायँ, ऊँचे लोग भी श्रम करें तो हृदय एक-दूसरे से जुड़ेंगे। आरोग्य भी सुधरेगा। आरोग्य के पीछे डॉक्टरों का जो खर्च होता है, वह भी बचेगा। स्वच्छ हवा, सूर्य के साथ, निसर्ग के साथ सम्बन्ध आयेगा तो विचार भी विकसित होंगे। ऊँचे लोगों को आरोग्यवान बनने की और श्रमिकों के साथ रहने की आदत होगी तो करुणा-वृत्ति जगेगी। अपने पास जो कुछ भी है, वह देने की वृत्ति हो जायगी। अपने से दुःखी कौन है, उसे ढूँढ़कर उसकी मदद करेंगे, तभी उन्हें समाधान मिलेगा। सोने के पहले यह विचार करेंगे कि आज सारा दिन मैंने क्या किया ? किसी दुःखी को सुखी करने के लिए कुछ किया क्या ? आज के दिन मैंने अगर नहीं किया तो जिन्दगी से एक दिन गँवाया। आज का दिन जीवन का नहीं, मृत्यु का दिन हुआ। इस तरह करुणा जगेगी और जीवन में निष्ठा आयेगी।

मैं साम्ययोग की बात करता हूँ और आर्थिक समता को गौण मानता हूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं आर्थिक समता नहीं चाहता हूँ। एक मनुष्य को रोज आठ आना मिले और दूसरे को रोज पचास रुपया मिले, ऐसी विषमता मैं नहीं चाहता। विषमता तो जरूर मिटनी चाहिए। परन्तु इसके मूल कारणों का नाश होना चाहिए। मत्सर से समाज में विषमता पैदा होती है। यह सारा गलत मूल्यों से हो रहा है। गलत मूल्य बदलने चाहिए। केवल ऊपरी समता से अंतःसमाधान नहीं होगा, यांत्रिक समाधान होगा। परस्पर सहकार और हर व्यक्ति की विशेष शक्ति का विकास हो तो समाज से विषमता हट सकती है। स्वर भिन्न-भिन्न हों, पर विसंवादी न हों, सब स्वरों में मेल हो, तब सब मिलकर संगीत होगा। इसी तरह समाज में करुणा, श्रम-निष्ठा बढ़ेगी तो जो समता होगी, वह आरोग्यवाली समता होगी। उसमें ऊँचाई-निचाई नही होगी। दस-दस मील चलकर जब मैं थक जाता हूँ और स्नान करने जाता हूँ तो सबसे पहले मैं अपने पाँव की मालिश करता हूँ और उसपर अपने हाथ से गरम पानी डालता हूँ। इस तरह उसकी सेवा करता हूँ। उस वक्त मेरे पाँव इतने खुश होते हैं कि उन्हें लगता है कि बाबापन में भेद नहीं। ऊँचा हाथ नीचे लाकर सेवा करता है। अगर मेरा हाथ कहे कि मैं ऊँचा हूँ, इसलिए तुम्हारी सेवा नहीं करूँगा तो दूसरे दिन पैर भी कहेगा, मैं भी नहीं चलूँगा तो बाबा की यात्रा ही रुक जायगी। इसलिए आज भी पाँव की सेवा करता हूँ। उसी तरह सारे देह के अवयव एक-दूसरे की सेवा करते हैं। इस तरह समता होगी तो साम्ययोग होगा। नहीं तो साम्यवाद आयेगा। सबपर समान प्रेम हो, सबकी योग्यता समान हो, सबका सम्मान, सबकी इज्जत समान हो, इस तरह विवेक-बुद्धि रखनी चाहिए। ऐसा साम्य स्थापित होगा कि जिसमें विवेक-बुद्धि है, तब कोई खतरा नहीं रहेगा। यह सारी प्रक्रिया अमल में लानी है। मैं आर्थिक समता चाहता हूँ। पर वह करुणा से और श्रम-निष्ठा से आनी चाहिए। तभी वह कल्याणकारी साबित होगी, नहीं तो विषमता में जैसे दुःख पैदा होते हैं, वैसे ही दुःख समता में दूसरी तरह से पैदा होंगे। यह गुण-विकास की दृष्टि से बड़े महत्त्व की बात है।

आपके इस पंचमहाल जिले में मैं फिर कब आऊँगा, यह

नहीं कह सकता हूँ। आज का यह दिन बिदाई का है। मैं आशा रखता हूँ कि इस जिले में सर्वत्र ग्राम-स्वराज्य की स्थापना होगी। इसके लिए जो कुछ समता लाने का काम करना पड़े, वह कीजिये। अभीतक आदिवासी और हरिजनों में जो काम हुआ है, उसका ग्राम-स्वराज्य सर्वोच्च और मधुर फल है, ऐसा मैं मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि यह फल करीब-करीब आपके पास आ भी गया है, थोड़ा सा प्रयत्न करना बाकी है। वह आप कीजिये, यही प्रार्थना है।

प्रार्थना-प्रवचन

पेटलाद (खेड़ा) ४-११-'५८

विज्ञानयुग में अहिंसा और शान्ति-सेना की आवश्यकता

अब दो-तीन दिनों में हमारी खेड़ा जिले की यात्रा समाप्त होगी। यह जिला गुजरात का बहुत ही क्रियाशील, समर्थ और विचार समझनेवाला जिला है। हर आन्दोलन में यह अग्रसर रहा है। इसलिए कुछ बातें रखने की मुझे इच्छा होती है। खेड़ा जिले की बहुत-सी सभाओं में मैंने अपने विचारों का जरा बारीकी से विश्लेषण किया है। आज यहाँ भी थोड़ा विश्लेषण करना चाहता हूँ।

अपार्थिव विज्ञानयुग

सभी जानते हैं कि विज्ञान-युग बहुत वेग से आ रहा है। मनुष्य को पृथ्वी को अपना क्षेत्र मानने में सन्तोष नहीं। वह दूसरी पृथ्वी में भी जाना चाहता है और उसके साथ सम्पर्क रखने की दृष्टि रखता है। चार सौ साल पहले कोलंबस जैसे शोधकों ने अमेरिका को ढूँढ़ा और अन्य राष्ट्र भी उस समय मिले। उसने सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर काफी खोज की। किन्तु यह सारी खोज पृथ्वी पर ही थी और उसके परिणामस्वरूप उन्होंने नया जगत भी देखा। विज्ञान की मदद से इंग्लैण्ड और अमेरिका ने सारी दुनिया के जीवन में जो परिवर्तन किया, उसे आप जानते ही हैं। चार सौ साल पहले जो जिज्ञासा सारी पृथ्वी के राष्ट्रों की खोज करने की थी, वही अब पृथ्वी के बाहर की दूसरी पृथ्वी के साथ सम्पर्क करने तक बढ़ गयी है। मानव उससे सम्पर्क साधने का विचार कर प्रयोग भी कर रहा है। हमें यह एक बहुत बड़ी प्रगति माननी चाहिए। इसीलिए कहना पड़ता है कि गत दस साल से अभिनव विज्ञान-युग शुरू हो गया है। वैसे तो विज्ञान-युग दो सौ सालों से चल रहा है, किन्तु नया युग, अभिनव विज्ञान-युग गये दस सालों से ही शुरू हुआ है। उसे हम 'अपार्थिव विज्ञान-युग' भी कह सकते हैं।

विकेन्द्रित अणुशक्ति से गाँव आबाद और शहर वीरान होंगे

आज मानव में जहाँ एक ओर स्थूल पृथ्वी को खींचकर अत्यन्त सूक्ष्म अणु में, जिसमें से यह पृथ्वी मिली है, प्रवेश करने की वृत्ति है, वहीं दूसरी ओर विराट में प्रवेश करने की भी वृत्ति है। विराट और अणु दोनों में प्रवेश करने की प्रवृत्ति आनेवाले अभिनव विज्ञान-युग की है। उसीसे यह प्रगति हो रही है और नये-नये औजार भी बन रहे हैं। आगे जाकर एक-एक गाँव में पूरी मानव-संस्कृति का दर्शन भी हो सकता है। अभी जो गाँव पिछड़े माने जाते हैं, उनका उस समय कुदरत के साथ सम्पर्क तो रहेगा ही, साथ ही उन्हें विज्ञान का लाभ भी मिलेगा। आज भाप की शक्ति, बिजली की शक्ति, पेट्रोल या कोयले की शक्ति केन्द्रित हो गयी है। किन्तु अणुशक्ति विकेन्द्रित हो सकती है और गाँव-गाँव में उसका उपयोग हो सकता है। कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो विज्ञान का इतना लाभ सुलभ होने पर भी उसका उपयोग न करे? तब कुदरत के साथ सम्पर्क साधने के लिए कुदरत का सम्पर्क कौन पसंद न करेगा? इसलिए फिर बड़े-बड़े शहर खाली हो जायँगे। सभी शहर छोड़कर गाँवों में जायँगे। कल अगर शहर की सभी सुविधाएँ गाँवों में मिलने लग जायँ और निसर्ग के साथ सम्बन्ध भी आये तो फिर सभी गाँव में जायँगे। अब बहुत जल्दी सर्वोदय का युग आनेवाला है।

सर्वोदय से ही विज्ञान का सच्चा मेल

जिनका खयाल है कि सर्वोदयवाले विज्ञान-युग में कैसे करेंगे, उनकी क्या चलेगी? वे कुछ समझते ही नहीं। आज कुछ वैज्ञानिकों के साथ मेरी बातें हुईं। उनसे मैंने कहा कि लोगों में कुछ ऐसा खयाल है कि सर्वोदय और विज्ञान, दोनों का मेल ही नहीं बैठता। किन्तु बात इससे बिलकुल उलटी है। अगर विज्ञान का किसीसे मेल न बैठता हो तो वह हिंसक समाज के साथ ही। हिंसक समाज-रचना का कायम रहना विज्ञान की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं। तब तो आगे जाकर, यह कहकर विज्ञान की प्रवृत्ति रोक देनी होगी कि अमुक-अमुक नहीं करना चाहिए, अमुक हद से आगे नहीं बढ़ना चाहिए। अगर स्पर्धा और खोजवाली समाज-रचना को कायम रखना हो तो विज्ञान की प्रगति न सिर्फ रोकनी पड़ेगी, बल्कि वैज्ञानिक पर अंकुश भी रखना पड़ेगा। अगर अंकुश से ज्यादा आगे जायँगे तो कानून के विरुद्ध हो जायगा। किन्तु अगर हम विज्ञान की प्रगति को निरंकुश मौका देना चाहते हैं और उसकी गति रोकना नहीं चाहते तो हमें विज्ञान के साथ अहिंसा का सम्बन्ध जोड़ना होगा। तभी हम सब तरह से सुरक्षित हो सकते हैं।

तभी मानव और विज्ञान का अस्तित्व सुरक्षित

अहिंसा के साथ विज्ञान जोड़ा जायगा तो पृथ्वी पर स्वर्ग आयेगा। किन्तु यदि हिंसा के साथ विज्ञान जोड़ा जायगा तो मानव का विनाश हो जायगा और विज्ञान का तो होगा ही। क्योंकि मानव ही मर जायगा तो विज्ञान इस दुनिया में किस आधार पर टिकेगा? अगर मानव और विज्ञान दोनों को जीवित रखना हो और दोनों की प्रगति चाहते हों तो विज्ञान का सम्बन्ध सर्वोदय के साथ, अहिंसा के साथ जोड़ना होगा। इसलिए सर्वोदय में विज्ञान को सब तरह से स्वच्छन्द विहार करने की इजाजत है। वह चीज बहुत-से लोग नहीं समझते और इसलिए कहते हैं कि सर्वोदयवाले विज्ञान की प्रगति रोकना चाहते हैं।

आज मन और मानव का परिवर्तन अनिवार्य

मैं यह इसलिए कहता हूँ कि अगर विज्ञान से संहारक शक्ति पैदा होती है तो उसका परिणाम यह होगा कि या तो विज्ञान पर मनुष्य अंकुश रखें या मनुष्य पर अंकुश रखकर मन पर अंकुश रखा जाय। इन दोनों में से एक बात तो करनी ही होगी। किन्तु अब विज्ञान पर अंकुश रखना तो संभव नहीं। तब मन पर अंकुश रखना ही एक उपाय रह जाता है। आज हमारा मन

बड़ा ही स्फोटक बन गया है। बात-बात में क्षोभ करता है। ऐसे मन और मनुष्य का परिवर्तन होना चाहिए। तभी विज्ञान के साथ-साथ मेल सध सकेगा।

सारा गुजरात शान्तिसैनिक बने

मैं जब शांतिसेना की बात रखता हूँ, तब बहुत बड़ा सवाल यही खड़ा होता है कि शांतिसेना का संगठन किस तरह करेंगे? अभी मैं गुजरात में मुख्यतः शांति-सेना का विचार लेकर घूमता हूँ। गुजरात के पास मैंने माँग रखी है कि सारा गुजरात शांति-सैनिक हो जाय। इसके लिए मेरी कोशिश चल रही है। इसलिए इस विचार का रूई की तरह जितना विश्लेषण हो सके, उतना आपके सामने रखना चाहता हूँ।

अहिंसक शक्ति की खोज : कर्तव्य

मेरे भाई मुझसे सवाल पूछते हैं कि आप शांतिसेना का संगठन कैसे करेंगे? हिंसक सेना के लिए तो कमांडर और सैनिक होता है और कमाण्डर की आज्ञा ही चलती है। उसे बहुत सख्त बनना पड़ता है। क्या अहिंसक शांतिसेना का भी यही हाल होगा? मैं उनको जवाब देता हूँ कि यह जो सवाल खड़ा होता है, उसमें विज्ञानयुग की दखल ही नहीं है। इसमें प्रश्नकर्ता यह भूल जाता है कि आज विज्ञानयुग आया है और इस युग में मानव-हृदय का परिवर्तन बहुत सूक्ष्म करना होगा। जैसे इस युग में मनुष्य घर बैठकर सारी दुनिया को आग लगा सकता है, वैसे ही घर बैठकर सारी दुनिया को शान्ति देनेवाली अहिंसक शक्ति की खोज कर सकता है। वह खोज किस तरह होगी, यह देखना होगा।

भाव-संशुद्धि मुख्य वस्तु

मान लीजिये कि सौ क्रोधी पुरुष हैं। दूसरी ओर पचास ऐसे हैं, जिन्हें क्रोध तो आता है, पर अहिंसा में निष्ठा होने से वे उसे दबाये रहते हैं। अब बताइये कि इनके बीच किसमें हृदय-परिवर्तन की शक्ति अधिक है? फिर मान लीजिये कि पाँच आदमी ऐसे हैं, जिन्हें क्रोध तो आता ही नहीं, बल्कि उनके हृदय में सबके प्रति प्रेम और करुणा भरी है। बताइये कि इन तीनों में किनका बल अधिक है? स्पष्ट है कि पाँच व्यक्ति संख्या में कम होंगे, फिर भी उनमें हृदय-परिवर्तन की शक्ति अधिक ही होगी। फिर यदि कोई ऐसा एक व्यक्ति हो, जिसका सबके साथ तादात्म्य हो और जो सबको अपना मित्र ही मानता हो तो वह उन पाँच लोगों से भी अधिक शक्तिशाली होगा। होमियोपैथी की दवा जितनी अधिक पीसी जाय और उसकी मात्रा सूक्ष्म होती जाय, वह उतनी अधिक शक्तिशाली होती है। अहिंसा की प्रक्रिया भी ठीक ऐसी ही होती है। विज्ञानयुग में तीव्र हथियार प्रभावकारी नहीं हो सकते। बल्कि सौम्यतम सत्याग्रह ही काम देगा। इसका अर्थ यह हुआ कि हम जितनी भावशुद्धि बढ़ायेंगे, उतनी ही हमारी शान्तिसेना बलवान होगी। शान्तिसेना में संख्या तो चाहिए ही, लेकिन मुख्य वस्तु भाव-संशुद्धि ही है। उसीसे शान्तिसेना अधिक मजबूत होगी।

शांतिसेना के संगठन का अद्भुत प्रभाव

शांतिसेना का संगठन भी सशस्त्र सेना से बिलकुल अलग तरह से होगा। मान लीजिये, मुझे कोई सारे भारत के लिए योजना करने को कहे तो मैं सारे भारत में १५-२० लोगों का एक मंडल बनाऊँगा, जो शांति की शक्ति पर अत्यन्त विश्वास रखते हों, उसी दृष्टि से जीवन बिताते हों, प्रतिदिन आत्म-परीक्षण कर निरंतर अपना शोधन करते हों और जिनमें चित्त-शुद्धि की मात्रा हो। ऐसी एक अखिल भारतीय शांति-समिति स्थापित हो जाय तो उसका असर ऐटम बम जैसा ही होगा। सवाल यही है कि हम वैसा ऐटम बम तैयार कर सकते हैं या नहीं? यह मेरा स्वप्न है, लेकिन आप चाहें तो इसे साकार कर सकते हैं। फिर तो वल्लभाचार्य, महावीर या प्रेममूर्ति भगवान कृष्ण, जिसको भी कृपा होनेवाली हो, होगी। आप सबको इस भावना की छूत लग जायगी तो यह काम होकर रहेगा। मैं भी यह छूत लगाने की कोशिश कर रहा हूँ। मेरा व्याख्यान भी यह छूत लगाने का ही एक प्रयत्न है। लोगों में यह एक गलत धारणा बैठ गयी है कि छूत खराब चीजों की ही लगती है। लोगों में यह आम भ्रम है कि हैजा, प्लेग, वगैरह या खराब दोषों की छूत जल्दी लगती है। किन्तु वैज्ञानिक अनुभव तो यही है कि सज्जनता की छूत जितनी शक्तिशाली और गतिवान होती है, उतनी दुर्जनता की छूत हो ही नहीं सकती, क्योंकि हम मूल में, अन्तर में आत्मरूप हैं, देहरूप नहीं। देह तो आती-जाती और बढ़ती-घटती रहती है। इन सबको छोड़ हममें ऐसा कुछ रूप है, जो निर्विकार, स्वच्छ और निर्मल है। इसलिए निर्मलता की छूत ज्यादा शाश्वत, ज्यादा तीव्र, ज्यादा उग्र, ज्यादा शक्तिशाली और ज्यादा गतिमान होती होगी।

दुर्जनता को छूत लगती है थोड़े समय के लिए। फिर तो वह कम ही हो जाती है। वह ज्यादा टिक नहीं पाती, क्योंकि वह कृत्रिम है, वह बल आत्म-शक्ति का नहीं, आत्मा के बाहर अनात्मा का है। वह उपाधि लेकर आता है और हट जाने पर वह परिणाम भी चला ही जाता है।

सज्जनता की छूत चिरस्थायी

खराब छूत मनुष्य की प्रकृति नहीं, विकृति है। इसलिए यह छूत लगती भी है तो थोड़े समय के लिए। फिर वह नष्ट ही हो जाती है। किन्तु भलाई की छूत, सज्जनता की छूत, सौजन्य की छूत तो शाश्वत काम करती है। इसलिए यह विचार आप समझ सकते हैं और मैं तो चाहता हूँ कि आप यह समझ लीजिये और इस तरह काम कीजिये तो आप यह काम अवश्य कर सकेंगे। यह तो छूत लगने की बात है।

यह काम गणित से परे

अगर कोई गणित करेगा कि बाबा ७॥ साल घूमा और काम तो इतना ही हुआ तो वह ठीक नहीं। अभी-अभी जे० पी० ने जाहिर किया कि सर्वोदय-आंदोलन ने काम तो बहुत किया, किन्तु उसके लिए लाख सेवक जागृत करने के लिए हम समर्थ नहीं हुए। इस तरह यह आन्दोलन निष्फल है। इसपर कुछ लोगों ने मुझसे पूछा कि क्या सचमुच आपका आन्दोलन निष्फल है? मैंने उनको जवाब दिया, इतना आप समझ लीजिये कि मेरा आन्दोलन तबतक निष्फल नहीं होगा, जबतक मेरी यात्रा चलती रहेगी। फिर आपकी समझ में आयेगा कि यह गणित का सवाल नहीं है। ऐसे काम गणित से नहीं होते। अमुक मकान बनाने में पचीस वर्ष लगे तो उसे जला देने में कितने वर्ष लगेंगे, ऐसे सवाल पूछे नहीं जा सकते। सारांश, यह एक सूक्ष्म विचार है। अगर आप खेड़ा जिले में रहनेवाले, जो सूक्ष्म विचार ग्रहण करने में प्रसिद्ध हैं, इस विचार का स्वाद लेंगे तो तंबाकू की फसल की तरह इसे कभी नहीं छोड़ेंगे। इसलिए मैं श्रद्धा से यह विचार आपके सामने रखता हूँ।

भारतीय शांति-समिति के दो कार्य

हमारी मनोनीत अखिल भारतीय शांति-समिति किसीपर

अपनी आज्ञा नहीं चलायेगी, किन्तु जो चाहेंगे, उन्हें सलाह भर देगी। कभी-कभी उसे बिना माँगे भी सलाह देनी होगी। दूसरा काम वह यह करेगी कि जिस-जिस प्रदेश में जहाँ कहीं दंगा, अशांति होगी, वहाँ शांति-सैनिक भेजेगी। वहाँ तलाश कर वस्तु-स्थिति की जानकारी प्राप्त करेगी। आज उसे जानने के लिए न्यायिक जाँच-समितियाँ छह-छह महीने तक रहती और फिर निर्णय देती हैं। किन्तु हमारे यहाँ ऐसा नहीं होगा। समझदार मनुष्य इशारे से ही सब कुछ समझ जाते हैं, जब कि कागज देखकर निर्णय करनेवालों को बहुत समय लग जाता है। फिर जब उनका पक्का निर्णय होता है तो छह महीने में परिस्थिति कहाँकी कहाँ बदल जाती है। विज्ञान-युग के छह महीनों में तो सारे देश में द्वेष फैलाने का काम भी हो सकता है। अगर हमें जैसे-तैसे शासन चलाना हो तो खुशी से चला सकते हैं। किन्तु नहीं, हमें विचार-प्रचार ही करना होगा। बुखार आया हो तो सिर्फ उसे नापने भर का काम नहीं करना है, बुखार कम हो और बिलकुल ही न आये, ऐसा भी काम करना है। इसलिए हम यह तलाश इसी तरह करें, जिस तरह माँ अपने अपराधी लड़के की तलाश करती है। इस तरह मातृवात्सल्य भाव और कारुण्य भाव से विरोधियों के कामों की तलाश कर उन्हें सलाह दें। इतना काम अखिल भारतीय समिति करेगी।

प्रान्तीय शान्ति-समिति के कार्य

फिर शांति-सेना की एक प्रांतीय समिति मुकर्रर होगी, जो ग्राम-ग्राम शांतिसेना का कार्य करेगी और सर्वोदय-साहित्य घर-घर पहुँचायेगी। इसके लिए एक प्रकाशन-समिति होगी, जो यह देखेगी कि एक भी घर ऐसा न छूटे, जहाँ सर्वोदय का साहित्य न पहुँचा हो। जिस तरह सूरज की किरण हरएक घर में प्रवेश करती है, उसी तरह हमें सर्वोदय-साहित्य भी घर-घर पहुँचाना है। कुछ लोग कहते हैं कि अभी सर्वोदय-साहित्य की बिक्री खूब होती है। उसमें फलानी पुस्तक की एक-एक लाख प्रतियाँ तक बिकती हैं। बहुत से साहित्यिक कहते हैं कि हमारी किताबों की दो-दो हजार प्रतियाँ निकलीं और वे प्रतियाँ तीन साल में बेची गयीं, वही बहुत हुआ। फिर भी हमारी यह लाख की बिक्री काफी नहीं। हमारे साहित्य का प्रचार तो घर-घर होना चाहिए। यह काम प्रांतीय समिति का होगा। उसका दूसरा काम यह रहेगा कि कोई भी शांति-सैनिक या लोक-सेवक हो, कोई जानकारी चाहे तो प्रान्तीय समिति से उसे वह तुरत मिल जायगी।

मान लीजिये, हम तीसरी योजना में एक जिले को एक इकाई मान लें तो इस खेड़ा जिले का भी एक यूनिट होगा। यहाँ दस-बारह लाख जन-संख्या है। अतः इस जिले से हमें ढाई सौ शांतिसैनिक चाहिए और इनकी मदद के लिए हजारों सेवक चाहिए। इसके लिए हर घर में सर्वोदय-पात्र की व्यवस्था भी करनी होगी। आपस-आपस में यह तय कर लें और संगठन कर लें तो दो सौ सैनिकों के लिए सर्वोत्तम व्यवस्था कर सकते हैं। उनकी संगति से दूसरे भी उसी तरह बनेंगे। जिस तरह सेना में सेनापति के पीछे दूसरे सभी सैनिक चलते हैं, उसी तरह यहाँ भी सिद्ध पुरुषों के पास दूसरे लोग जायँगे। इस तरह शांति-सेना की कल्पना एक जिले के लिए रहेगी। जिला-समिति को ऊपर से आदेश नहीं दिया जायगा। एक सलाह-समिति शिक्षण-योजना में ही ऊपर से थोड़ी सलाह देती रहेगी। इस तरह जब एक-एक जिले को एक-एक इकाई मानकर आयोजन होगा तो वे एक-दूसरे से परिचित रहेंगे। प्रेम करना वे लोग अपना धर्म समझेंगे। इस तरह स्पष्ट है कि जो योजना सशस्त्र सेना के लिए करनी पड़ती है, वैसी हमें नहीं करनी पड़ेगी।

ग्राहकों की सेवा में

पू० विनोबाजी अज्ञात संचार कर रहे हैं। इस कारण उनके प्रवचन भी हमें नहीं मिल पा रहे हैं और बिना प्रवचनों के "विनोबा-प्रवचन" का नियमित रूप से प्रकाशन हो ही कैसे सकता है? इसलिए १ जनवरी '६० के बाद अनिश्चित समय के लिए "विनोबा-प्रवचन" का कार्य स्थगित किया जा रहा है।

निवेदन है कि ग्राहक बन्धु सन् १९६० का वार्षिक शुल्क अब न भेजें। फिरसे जब "विनोबा-प्रवचन" प्रकाशित होने लगेगा, तब ग्राहकों को सूचित कर दिया जायगा।

जिन ग्राहकों का चन्दा हमारे यहाँ बाकी है, वह जमा रहेगा और यथासमय प्रवचन प्रकाशित होते ही उन्हें अंक भेज दिये जायँगे।

—व्यवस्थापक

खेड़ा जिला सरदार का

विज्ञान-युग में अहिंसा की क्या आवश्यकता है, विज्ञान के साथ अहिंसा ही क्यों जोड़नी चाहिए और हिंसा क्यों नहीं, यह मैंने आपके सामने रखा है। जिस तरह मानव ने विज्ञान की संहारक शक्ति का संगठन किया है, उसी तरह विज्ञान का उपयोग कर हम मानसिक प्रेम किस तरह प्राप्त करें, इस बारे में मैंने अपने विचार आपके सामने रखे हैं। शांति-समिति के लिए कम-से-कम कितनी रचना की जानी चाहिए। यह भी मैंने आपके सामने रखा है। अब यही कहना है कि आप खेड़ा जिले के लोग मेरी वासना पूर्ण कीजिये। यह कोई ऐसा-वैसा जिला नहीं, सरदार का जिला है। सरदार ने सत्याग्रहियों का आवाहन किया तो उनके आदेश पर सभी सत्याग्रह में जुटे। यहाँके लोगों में जो यह सत्व है, वह शांतिसेना में भी होना चाहिए। यहाँ इसके लिए अवकाश है। अगर यहाँ इस तरह काम होगा तो इससे बहुत प्रकाश मिलेगा। मैं एक खास आशा लेकर यहाँ बोल रहा हूँ। मेरी यह आशा सफल करने के लिए परमेश्वर आपको शक्ति दे, यही प्रार्थना है।

●●●

अनुक्रम

१. आदिवासियों को आत्मशक्ति का भान करायें
झोस १८ अक्तूबर '५८ „ पृष्ठ ९०९
२. अहिंसा में समझौते की कुछ भी गुंजाइश नहीं
तारापुर ५ नवंबर '५८ ९१०
३. तीन हजार शान्ति-सैनिकों की माँग...
सियालज १ अक्तूबर '५८ „ ९१३
४. श्रमनिष्ठा और करुणा जगायें
कालोल २५ अक्तूबर '५८ „ ९१६
५. विज्ञान-युग में अहिंसा और शान्तिसेना की आवश्यकता
पेटलाद ४ नवंबर '५८ „ ९१८

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा', वाराणसी।